4

मेरा विद्यार्थी जीवन

पाठ-प्रवेश

विद्यार्थी जीवन में हमारी जो आदतें बन जाती हैं, वे जीवनपर्यंत बनी रहती हैं। विद्यार्थी जीवन में सदाचार और व्यायाम अत्यधिक महत्त्व रखते हैं। आचरण में सदाचार हमें सभ्य बनाता है तथा व्यायाम से हमारा शरीर स्वस्थ-तंदुरुस्त बना रहता है। गाँधी जी ने अपने बचपन के पन्ने बच्चों के सामने खोलकर रख दिए हैं। वे हमें माता-पिता की सेवा, सैर करना, निज भाषा से प्रेम, सुंदर लिखाई के लिए भी प्रेरित करते हैं।

हाईस्कूल में मैं मूर्ख नहीं माना जाता था। शिक्षकों के प्रति प्रेमभावना हमेशा प्रकट करता रहा। हर साल माता-पिता को विद्यार्थी की पढ़ाई तथा चाल-चलन के संबंध में प्रमाण पत्र भेजे जाते। उनमें कभी मेरे चाल-चलन की शिकायत नहीं की गई। दूसरे दर्जे के बाद तो इनाम भी पाए और पाँचवें तथा छठे दर्ज़े में तो क्रमशः चार रुपए और पंद्रह रुपए मासिक छात्रवृत्तियाँ भी मिली थीं। छात्रवृत्ति मिलने में मेरी योग्यता की अपेक्षा भाग्य ने अधिक सहायता की। ये छात्रवृत्तियाँ सब लड़कों के लिए नहीं थीं और उस समय चालीस-पचास विद्यार्थियों की कक्षा में सौराष्ट्र प्रांत के विद्यार्थी बहुत नहीं होते थे।

अपनी तरह से मुझे याद आता है कि मैं अपने को बहुत योग्य नहीं समझता था। इनाम अथवा छात्रवृत्ति मिलती, तो मुझे आश्चर्य होता। परंतु हाँ, अपने आचरण का मुझे बड़ा खयाल रहता। सदाचार में यदि चूक होती, तो मुझे रोना आ जाता। यदि मुझे कोई ऐसा काम बन पड़ता जिसके लिए शिक्षक को उलाहना देना पड़े, अथवा उनका ऐसा विचार भी हो जाए, तो यह मेरे लिए असह्य हो जाता। मुझे याद है, एक बार मैं पिटा भी था। मुझे इस बात का दुख न हुआ कि मैं पिटा किंतु इस बात का बहुत दुख हुआ कि मैं दंड का पात्र समझा गया। मैं फूट-फूटकर रोया। यह घटना पहली अथवा दूसरी कक्षा की है। उस समय सोबजी एदलजी गीमी हेडमास्टर थे। वे अनुशासनप्रिय थे। अनुशासन के नियमों का पालन करवाते, विधिपूर्वक काम करते और काम लेते तथा पढ़ाई अच्छी कराते। उन्होंने ऊँचे दर्जे के विद्यार्थियों के लिए व्यायाम, क्रिकेट आदि अनिवार्य कर दिए थे।

मेरा जी खेल में न लगता था। अनिवार्य होने के पहले मैं व्यायाम, क्रिकेट या फ़ुटबॉल में भाग लेने कभी न जाता था। अनजाने में मेरा झेंपूपन भी एक कारण था। अब मैं देखता हूँ

शब्दार्थ

छात्रवृत्ति—वज़ीफा, विद्या अर्जन के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता; **आचरण**—व्यवहार; **असह्य**—जो सहा न जा सके; **विधिपूर्वक**—नियमों के अनुसार; **झेंपूपन**—संकोच

Scanned with Cam

कि व्यायाम की यह अरुचि मेरी भूल थी। उस समय पर मेरे ऐसे गलत विचार थे कि व्यायाम का शिक्षा के साथ कोई संबंध नहीं है। पीछे जाकर मैंने समझा कि व्यायाम अथवा शारीरिक शिक्षा के लिए भी विद्याध्ययन में उतना ही स्थान होना चाहिए, जितना मानसिक शिक्षा का।

फिर भी मुझे कहना चाहिए कि कसरत में न जाने से मुझे कोई नुकसान नहीं हुआ। इसका कारण है, पुस्तकों में मैंने पढ़ा था कि खुली हवा में घूमना अच्छा होता है। यह मुझे पसंद आया और तभी से घूमने जाने की मुझे आदत पड़ गई, जो अब तक है। घूमना भी एक प्रकार का व्यायाम है और इस कारण मेरा शरीर थोड़ा-बहुत सुगठित हो गया।

अरुचि का दूसरा कारण था, पिता जी की सेवा-सुश्रूषा करने की तीव्र इच्छा। स्कूल बंद होते ही तुरंत घर पहुँचकर उनकी सेवा में जुट जाता। जब व्यायाम अनिवार्य कर दिया गया, तब इस सेवा में विघ्न उपस्थित होने लगा। मैंने अनुरोध किया कि पिता जी की सेवा करने के लिए व्यायाम से मुक्ति मिलनी चाहिए परंतु गीमी साहब क्यों कर मुक्ति देने लगे?

एक शनिवार को सुबह का स्कूल था। शाम को चार बजे व्यायाम में जाना था। मेरे पास घड़ी न थी। आकाश में बादल छा रहे थे, इस कारण समय का पता न चल सका। बादलों में मुझे धोखा हुआ। जब तक व्यायाम के लिए पहुँचा, तब तक सब लोग चले गए थे। दूसरे दिन गीमी साहब ने हाज़िरी देखी तो मुझे गैरहाज़िर पाया। मुझसे कारण पूछा। कारण तो जो था, वही मैंने बतलाया। उन्होंने उसे सच न माना और मुझ पर एक या दो आना, ठीक याद नहीं, कितना जुर्माना किया।

मुझे इस बात से अत्यंत दुख हुआ कि मैं झूठा समझा गया। मैं यह कैसे सिद्ध करता कि मैंने झूठ नहीं बोला पर कोई उपाय न रहा था। मन-मसोसकर रह जाना पड़ा। मैं रोया और समझा कि सच बोलने वाले को असावधान भी नहीं रहना चाहिए। अपनी पढ़ाई के दिनों में मेरी वह पहली और आखिरी भूल थी। मुझे कुछ-कुछ स्मरण है कि अंत में वह जुर्माना माफ़ कर दिया गया था।

शब्दार्थ

सुश्रूषा—स्वास्थ्य की देख-रेख; **विघ्न**—बाधा; **स्मरण**—याद; **कुबुद्धि**—गलत विचार

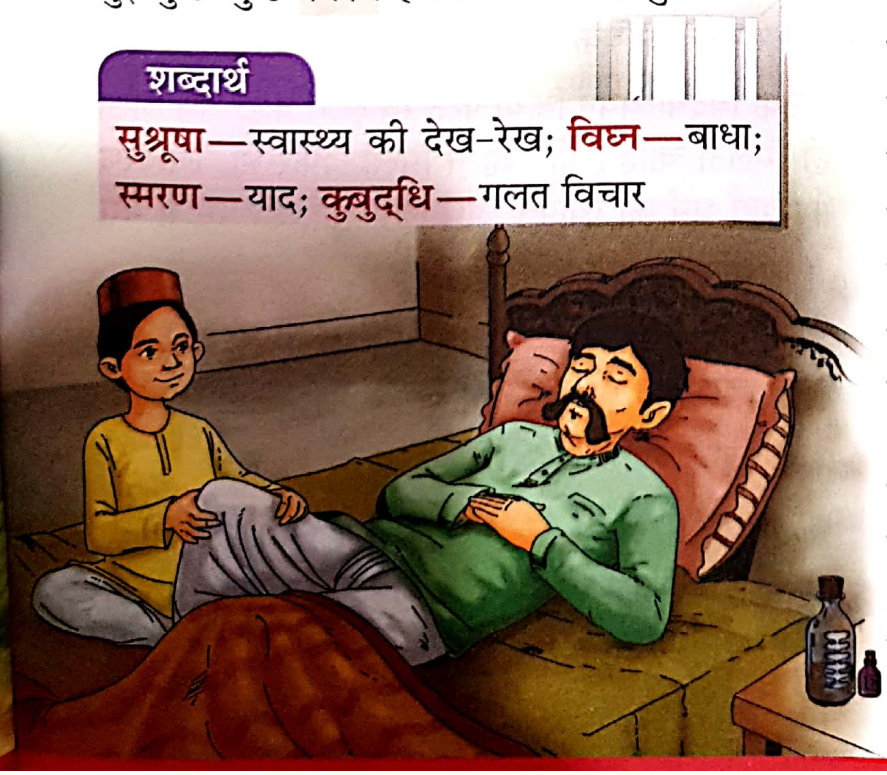

कुछ दिन बाद व्यायाम से छुट्टी मिल गई। पिता जी की चिट्ठी जब हेडमास्टर को मिली कि मैं अपनी सेवा-सुश्रूषा के लिए स्कूल के बाद इसे अपने पास चाहता हूँ, तब जाकर उससे छुटकारा मिला।

व्यायाम की जगह मैंने घूमना जारी रखा। इस कारण शरीर से मेहनत न करने की भूल के लिए शायद सज़ा न भोगनी पड़ी हो परंतु एक दूसरी भूल की सज़ा मैं आज तक पा रहा हूँ। पढ़ाई में सुलेख का होना आवश्यक नहीं, यह कुबुद्धि मेरे मन में न जाने कहाँ से आ गई, जो ठेठ विलायत जाने

Scanned with Cam

तक रही। खासकर दक्षिण अफ्रीका में, जहाँ वकीलों के और दक्षिण अफ्रीका में जन्मे और पढ़े युवकों के मोती की तरह अक्षर देखे, तब जाकर मैं बहुत लजाया और पछताया। मैंने देखा कि लेख का खराब होना अधूरी शिक्षा की निशानी है। बाद में मैंने अपना लेख सुधारने की कोशिश की परंतु पके घड़े पर मिट्टी कैसे चढ़ सकती है ? जिस बात की अवहेलना मैंने बचपन में की, उसे मैं फिर आज तक न सुधार सका। हर एक नवयुवक और नवयुवती मेरे उदाहरण को देखकर चेतें और समझें कि सुलेख शिक्षा का आवश्यक अंग है। लेख सुधारने के लिए लेखन-कला आवश्यक है। मैं तो अपनी यह राय बता रहा हूँ कि बालकों को आलेखन कला सीखनी चाहिए। जिस प्रकार पक्षियों और वस्तुओं आदि को देखकर बालक उन्हें याद रखता है और आसानी से पहचान लेता है, उसी प्रकार अक्षरों को भी पहचान लेता है और जब आलेखन कला सीखकर चित्र आदि बनाना सीख जाता है, तब यदि अक्षर लिखना सीखे, तो उसके अक्षर सुंदर हो जाएँ।

संस्कृत मुझे रेखागणित से भी अधिक मुश्किल मालूम पड़ी। रेखागणित में तो रटने की कोई बात न थी, परंतु संस्कृत में मेरी दृष्टि से सब रटना था। यह विषय भी चौथी कक्षा से शुरू होता था। छठी कक्षा में जाकर मेरा दिल बैठ गया। संस्कृत वर्ग और फ़ारसी वर्ग में एक प्रकार की प्रतिस्पर्धा रहती। फ़ारसी के मौलवी साहब नरम आदमी थे, विद्यार्थी लोग आपस में बातें करते कि फ़ारसी बहुत सरल है और मौलवी साहब भी भले आदमी हैं। विद्यार्थी जितना याद करता है, उतने पर ही वे निभा लेते हैं। सरल होने की बात से मैं ललचाया और एक दिन फ़ारसी के दर्जे में जाकर बैठा। संस्कृत शिक्षक को इससे दुख हुआ। उन्होंने बुलाया और कहा, "यह तो सोचो, तुम किसके लड़के हो। धर्म की भाषा तुम नहीं पढ़ना चाहते ? तुम्हें जो कठिनाई हो, सो मुझे बताओ। मैं तो समस्त विद्यार्थियों को अच्छी संस्कृत पढ़ाना चाहता हूँ। आगे चलकर तो इसमें रस की घूँटें मिलेंगी। तुमको इस तरह निराश नहीं होना चाहिए। तुम फिर मेरी कक्षा में आकर बैठो।" मैं शरमिंदा हुआ। शिक्षक के प्रेम की अवहेलना न कर सका। आज मेरी आत्मा मास्टर कृष्णशंकर का उपकार मानती है क्योंकि जितनी संस्कृत मैंने उस समय पढ़ी थी, यदि उतनी भी न पढ़ी होती, तो आज मैं संस्कृत शास्त्रों का जो आनंद ले रहा हूँ, वह न ले पाता। बल्कि मुझे इस बात का पश्चात्ताप रहता है कि मैं संस्कृत अधिक न पढ़ सका।

मैंने छह-सात साल की उम्र से लेकर सोलह वर्ष तक विद्याध्ययन किया परंतु स्कूल में कहीं धर्म शिक्षा न मिली। जो चीज़ शिक्षकों के पास से सहज ही मिलनी चाहिए थी, वह न मिली। फिर भी वातावरण से तो कुछ-न-कुछ धर्म-प्रेरणा मिला करती थी। यहाँ धर्म का व्यापक अर्थ लेना चाहिए। धर्म से मेरा अभिप्राय आत्मज्ञान से है।

मैं अच्छी तरह इस बात का अनुभव कर रहा हूँ कि बचपन में पड़े शुभ-अशुभ संस्कार बड़े गहरे हो जाते हैं और इसलिए यह बात अब तक खल रही है कि लड़कपन में कितने ही अच्छे ग्रंथों का श्रवण-पाठ न हो पाया।

—मोहनदास करमचंद गाँधी

शब्दार्थ

अवहेलना—उपेक्षा; **आलेखन कला**—सुंदर लेखन का तरीका; **प्रतिस्पर्धा**—मुकाबला; **अभिप्राय**—मतलब; **श्रवण-पाठ**—सुनना और पढ़ना

Scanned with Cam